विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१ पोस्टल रजि. नं. (M) NS (C) 36

वर्ष ११ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२५ • आसाढ़ पूर्णिमा [शक] • दि. १७-७-१९८१ • अंक १

विपश्यना

(ईसाई साध्वी भगिनी ब्रिगिटा)

बम्बई से रेल द्वारा लगभग दो-ढाई घंटे की दूरी पर स्थित इगतपुरी गांव और गांव के ठीक बाहर "विपश्यना विश्व विद्यापीठ" है। यह अभी अपनी प्रारंभिक निर्माण-अवस्था में है। एक बड़ी इमारत के एक खण्ड में पाकशाला एवं भोजनालय तथा दूसरे में ध्यान-कक्ष। कई सामूहिक शयनागार हैं। और कुछ मिट्टी तथा खपच्चियों की बनी कुटियाएं हैं जिनके नुकीले छप्परों के समूह विशाल पर्वत की विपरीत पृष्ठभूमि में नयनाभिराम चित्र प्रस्तुत करते हैं। आगे विस्तार की योजनाए हैं। एक चैत्य जिसके चारों ओर एक-एक साधक के लिए अलग-अलग ध्यानगुफा, एक विशाल हाल तथा संभवतः कुछ और अवासगृहों के लिए रेखांकन हो चुका है। *

विपश्यना क्या है? कैसे बताऊं? उसी विवरणिका के कुछ अंश उद्धृत करती हूं जिसको सभी प्रत्याशित शिविरार्थियों को आवेदन करने के पहले भलीभांति समझ लेना होता है।

"विपश्यना" भारतवर्ष की अति प्राचीन ध्यान-शैलियों में से है। दीर्घकाल तक मानव समाज में आलोप रही इस विधि की गौतम बुद्ध ने २५०० वर्ष पूर्व पुनः शोध की। विपश्यना का अर्थ है सच्चाई को उसके वास्तविक रूप में देखना। यह आत्म-निरिक्षण द्वारा आत्म-शोधन की विधि है। इसका आरंभ अपने स्वाभाविक श्वास के निरीक्षण से होता है। जिससे कि चित्त एकाग्र होता है। इससे प्राप्त कुशाग्र जागरूकता द्वारा साधक अपने शरीर और मन के परिवर्तनशील स्वभावका दर्शन करता हुआ अनित्य, दुःख और अनात्मके विश्वजनीन सत्यका अनुभव करता है। प्रत्यक्ष अनुभूतिजन्य सत्य-दर्शन विशुद्धिका

* यह लेख लगभग दो वर्ष पूर्व लिखा गया था। अब तक बहुत सा निर्माणकार्य संपन्न हो चुका है। यथा—४६ ध्यानगुफाओंसे घिरा हुआ दुमंजिला ध्यान-चैत्य जिसका विस्तार क्रमशः जारी है और उससे सटा हुआ लगभग ३०० व्यक्तियोंके लिए सामूहिक ध्यान-कक्ष कुछ आधुनिक सुविधा-संपन्न आवास-कुटीरों सहित २५० व्यक्तियोंके निवासकी समुचित व्यवस्था तथा और भी कई अन्य आवश्यक भवन निर्माणाधीन हैं।

धम्म वाणी

निधाय दण्डं भूतेसु तसेसु थावरेसु च।
यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

धम्मपद २६/२३

जंगम व स्थावर (चर व अचर) सभी प्राणियों के प्रति जिसने दण्ड त्याग दिया है, (हिंसा त्याग दी है), जो न किसी की हत्या करता है, न हत्या करवाता है, उसे ब्राम्हण कहता हूं।

काम करता है। सारी की सारी विधि (धम्म) सभी सांसारिक समस्याओं के लिए सार्वजनीन औषधि है तथा इसका किसी भी व्यवस्थित मजहब अथवा संकीर्ण सांप्रदायिकतासे कोई संबंध नहीं है। इसी कारण बिना जाति, वर्ण तथा मत-मतांतरोंके भेद-भावके सभी व्यक्तियों द्वारा किसी भी समय और किसी भी स्थान पर इस तकनीक का अभ्यास किया जा सकता है। तथा यह सभीके लिए समान रूपसे लाभकारी सिद्ध होती है।

प्रशिक्षण-काल पर्यंत साधकको अपने आचार्यके प्रति तथा विपश्यना विधि, आचार-संहिता, समय-सारिणी आदि संबंधी सभी नियम-उपनियमोंके प्रति पूर्णतया समर्पण करना होता है। यह परमावश्यक है कि शिविर-कालमें सभी प्रकारके कर्मकांड, अनुष्ठान, धूप-दीप आदिका प्रयोग, माला-सुमिरन, मंत्रोच्चार, भजन-कीर्तन, प्रार्थनाएँ आदि सभी क्रियाएँ संपूर्णरूपसे स्थगित कर दी जॉय। साधकोंको शिविर प्रारंभसे लेकर दसवें दिनके प्रातः ६:३० बजे तक आर्यमौन पालन करना अनिवार्य है। उन्हें संपूर्ण प्रशिक्षणकाल पर्यंत विद्यापीठमें ही रहना होता है। वे अपने आचार्यकी विशेष अनुमतिसे ही शिविर छोड़ सकते हैं। मिलनेवालों, टेलीफोन करनेवालों तथा पत्रों आदिसे संपर्क तोड़ लेना होता है। धूम्रपानकी अनुमति नहीं होती। किसी भी प्रकारकी पठन एवं लेखन सामग्री, यहाँ तक कि धर्मग्रंथ भी विद्यापीठमें नहीं लाने चाहिए। लिखने पढ़ने पर रोक इस ध्यान-विधिके अति नियमनिष्ठ व्यवहारिक पथ पर बल देनेके लिए है।

धर्म-प्रशिक्षण नितांतरूपसे निःशुल्क है। भोजन-आवास एवं व्यवस्था संबंधी सारे व्यय पूर्व साधकोंके दानसे चलते हैं। लाभान्वित

होने पर संतुष्ट अवस्थामें आभार तथा सद्भाव प्रदर्शनके रुपमें अपनी श्रद्धा तथा सामर्थ्यके अनुरूप औरोंके हितार्थ देनेवाले साधकों से ही दान स्वीकार किया जाता है।

प्रातः चार बजेसे रात दस बजे तककी समय-सारिणी अत्यंत व्यस्त रखनेवाली है। बीच-बीचमें नाश्ते-भोजन तथा विश्रामके लिए आवश्यक अवकाश है।

संसारके विभिन्न भागोंसे आए १५० स्त्री-पुरूषोमेंसे एक मैं जब विगत दिसम्बरके शिविरमें भाग लेने इगतपुरी गई तो मन में थोड़ी घबराह सी थी। यह अंग्रेज़ीभाषी शिविर था और दो तिहाई विद्यार्थी अंग्रेजी भाषी दुनियासे आए थे। अधिकांश मध्य बीसी से लेकर तीसीकी आयुके थे जो भारतमें आध्यात्मिक शिक्षाकी खोजमें आये थे, जिसको कि वे अपने देशके गिरिजाघरोंसे प्राप्त करनेमें असफल रहे थे। कुछ तो वर्षों से इसकी खोजमें थे तथा संसारके विभिन्न भागोंमें चलते ऐसे सत्रों में बार-बार मिलते रहे थे। बाक़ियोंमें वे पुराने साधक थे जो इससे पहले भी एक या अनेक विपश्यना शिविरोंमें भाग ले चुके थे और नियमित दैनिक अभ्यास करते थे। इनके विषयमें ऐसा लगता था कि जिसकी उन्हें खोज थी वह प्राप्त हो चुकी है। इनमेंसे कुछ ऐसे थे जिनके चेहरों पर गहन आध्यात्मिकता छलकती थी।

इस साधना का वर्णन किया जा सकता है किन्तु इसे पढ़कर सीखा नहीं जा सकता। इसके लिए गुरू द्वारा आनुक्रमिक दीक्षा की अनिवार्य आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त घंटो तक दैनिक अभ्यास की भी अपनी विशेष उपादेयता है। एक ओर महिलाएं और दूसरी ओर पुरुषों में विभाजित ध्यान-कक्ष के बड़े हाल में हम लोग पाल्थी मारकर आसनों पर प्रतिदिन १२-१२ घंटे ध्यान में बिताते थे। वैसे थक जाने पर यदि आवश्यक हो तो बीच-बीच में हमें थोड़ा आराम कर लेने की छूट भी थी। प्रति सायंकाल 'धर्म-चर्चा' होती थी जिसमें आगामी दिन के लिए ध्यान संबंधी निदेश दिए जाते तथा विधि का सिद्धान्त पक्ष समझाया जाता था। तीन दिनों तक तो हम श्वास तथा नाक और ऊपरी होठ के क्षेत्र में होने वाली संवेदनाओं पर मन लगाते रहे। फिर वास्तविक विपश्यना की दीक्षा मिली। सिर से लेकर पांव की उंगलियों तक एक स्वीकृत क्रमानुसार शरीर के विभिन्न भागों में चाहे जैसी भी संवेदना हो, धीमी क्रमबद्ध गतिसे उसका पर्यावलोकन करना पड़ता था। प्रारंभ में यह बडा कठिन श्रमसाध्य काम लगा। परन्तु आगामी दिनों में इस मूलभूत क्रिया के कई परिमार्जित एवं परिवर्तित रूप सीखे। मन इतना संवेदनशील हो उठा कि अब हमें शरीर के किसी छोटे से भाग पर एकाग्र करने को कहा जाता तो उस स्थान पर संवेदना का तुरंत अनुभव होने लगता। सातवें या आठवें दिन हमसे कहा गया कि शिविर के बाकी बचे दिनों में हम सारे दिन ध्यान के अतिरिक्त और जो कुछ भी करें उसके प्रति भी जागरूक रहनेका अभ्यास करें।

प्रतिदिन हमें नाम ले-लेकर एकाकी अथवा छोटे-छोटे समूहों में गुरुजी के सामने बैठाया जाता। प्रत्येक से अपनी पारी आने पर ध्यान-काल में होनेवाली संवेदनाओ के विषय में प्रश्न पूछे जाते और उचित परामर्श दिए जाते। फिर हम शांतिपूर्वक उनके साथ ध्यान करते, जबकि वे हमारे प्रकम्पनों में सम्मिलित होकर हमें सहारा देते।

अंतिम दिन हमें सिखाया गया कि अबसे हम प्रत्येक ध्यान की समाप्ति पर मैत्री-भावना करें। पर इससे पूर्व हमें आत्मनिरीक्षण करके देख लेना चाहिए कि हम विद्वेष तथा तनाओं से मुक्त हैं और तभी सारे विश्व के प्रति प्रेम और सद्भावना की तरंग प्रसारित करनी चाहिए।

बौद्ध लोग व्यक्तिगत ईश्वर में विश्वास नहीं करते। किंतु उनका धर्म में विश्वास है जो संसार का श्रेष्ठ मूल तत्व कहा जा सकता है। धर्म के शाब्दिक अर्थ हैं मार्ग, विधि, नियम, कानून, ऋत्। जिस प्रकार गुरुजी ने इसे प्रस्तुत किया उससे लगा यह कोई अनमोल रत्न है जो स्वयं भी ग्रहण करने योग्य है तथा औरों को बांटने योग्य है; वह इसे विश्व का विधान कहते थे, क्योंकि यह विश्वव्यापी तत्व है और इस पर किसी संप्रदाय अथवा मत-मतांतर का एकाधिकार नहीं है। जिसका मन और हृदय पवित्र हो वही सही माने में इसमें स्थापित है। मानव की आंतरिक विशुद्धता ही विपश्यना ध्यान का वास्तविक उद्देश्य है। हमारे बोध एवं विकास का अवरोधक पाप ही है और यह एक भयावह सत्य है। इस संबंध मे गुरुजी का चित्रण बड़ा ही सजीव होता था। कोई बात हुई जो हमे प्रिय नहीं लगी और इसे लेकर हृदय में गांठ बांध ली। प्रतिदिन ये गांठे बढ़ाते जाते हैं और इनकी एक उलझनभरी अपावन गुत्थी बनती जाती है। हमारे सारे विचार वचन और कर्म इसी उलझाव में से निकलते हैं। अतः हम किसी परिस्थिति में अपने पवित्र मंतव्यों के अनुसार कर्म करने को स्वतत्र नहीं रहते, बल्कि अपने अतीत के अनुभवजन्य भय और पीड़ाओं के संग्रहो के आधार पर अंध-प्रतिक्रिया करने के लिए विवश हो जाते हैं। इसी को हिन्दू कर्म कहते हैं और बौद्ध संस्कार। यह कारण-परिणामी संलक्षणा, जिससे छुटकारा पाने में हम असमर्थ रहते है। हमें इसीसे मुक्ति की आवश्यकता है। यहां ईसाइयों और बौद्धों में मतभेद प्रतीत होता है। क्योंकि ईसाई एक त्राणकर्ता में विश्वास करते हैं, जो हमे मुक्त करता है। जबकि बौद्धों का विश्वास है कि हमारे अपने परिश्रम से ही इस ध्येय की प्राप्ति हो सकती है। किंतु भेद कदाचित इतना बड़ा नहीं है। "अपनी मुक्ति स्वयं करो" (फ़िलिपियन्स २-१२) गुरुजी इस धर्म-वाक्य का बार-बार उद्धरण करते हैं और सचमुच यदि हम ईसामसीह की शिक्षाओं को गंभीरता से लें तो स्पष्ट ही बाईबल ईसाइयों से घोर परिश्रम की अपेक्षा करती है। क्या चैस्टरटन ने नहीं कहा कि "ईसाइयत को परखकर किसी ने इसे निरर्थक नहीं साबित किया। इसे कष्टसाध्य पाया गया अतः परखा ही नहीं गया।" दूसरी ओर गुरुजीने यह भी बताया कि जब साधक गंभीरता से अपनी परिशुद्धि का काम आरंभ कर देता है तो विश्व की सारी दृष्य-अदृष्य शुभ शक्तियां और तरंगे उसकी सहायता करने आ जाती हैं।

उन्होंने बताया कि सारे दुःख की जड़ व्यक्ति के राग और द्वेष में निहित हैं। उसे कुछ अच्छा लगता है और वह तुरंत इस सुख को बनाए रखने के लिए राग-रंजित हो उठता है और यही मन, वचन, कर्म के पाप का कारण बनता है। उसे कुछ बुरा लगता है और उसे दूर करने का प्रयास करता है और फिर ऐसा ही परिणाम होता है। मानव के सारे दुःख यहीं से प्रारंभ होते हैं। हमें बताया गया कि ध्यान के समय जो कुछ भी अनुभव हो पीड़ा, असुविधा,

सुख, क्षोभ — उसे शरीर और मन की वास्तविकता मानकर उपेक्षा-भाव से स्वीकार कर, समता में स्थित रहें। वास्तव में इसके अतिरिक्त कुछ किया भी नहीं जा सकता। इसके विपरित यदि पीड़ा से लड़ें तो पीड़ा को बढ़ाना ही होता है। जैसे शारीरिक पीड़ा के साथ मानसिक पीड़ा बढा लेना। जबकि पीड़ा को स्वीकार कर लेने से या तो पीड़ा पीड़ा जैसी नहीं लगती अथवा झेलने योग्य हो जाती है। गुरूजीने बुद्ध के जीवन से एक प्रभावशाली दृष्टांत दिया। उनके बढते प्रभाव के कारण किसी ईर्षालु विरोधी ने उन्हें गालियां दी, अपमानित किया और उन पर लांछन लगाए पर वे अविचलित रहे, क्रुद्ध नहीं हुए। पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया, "तुमने जो गालियां दी वह मैंने स्वीकार ही नहीं की। तुम्हारी चीज तुम्हारे पास ही रही।"

गुरूजी के होठों पर 'अनिच्च' (अनित्य, परिवर्तनशील) शब्द अधिकतर बना रहता है। हमें अपने शरीर में सतत होने वाले परिवर्तनों के प्रति सदा जागरूक रहना है। प्रत्येक संवेदना किसी न किसी परिवर्तन की द्योतक है। सारी वस्तुएं बदल रही हैं। हम प्रतिक्षण अपने चारों ओर विद्यमान विश्व से परमाणु ग्रहण करते रहते हैं तथा इसी परिमाण में निरंतर बाहर विसर्जन भी करते रहते हैं। कोई ऐसी स्थिरता कहीं नहीं है जिसे 'मैं' या 'आत्मा' कहा जाय। हम वायु हैं जो श्वास द्वारा लेते हैं। भोजन हैं जो खाते हैं। सारे भौतिक पदार्थ ऊर्जा ही हैं। मन और तन सतत परिवर्तन-शील विद्युत-तरंगी कणों का बनाव है। मैं पांच वर्ष पूर्व का वही भौतिक प्राणी नहीं हूँ। मनोवैज्ञानिक स्तर पर तो "मैं" और भी अस्थिर है। क्योंकि चित्तवृत्तियों के व्यवहार विद्युतगति से बदलते रहते हैं।

मेरे बुरे दिन चल रहे हैं? अनिच्च! बदल जायेंगे! जीवन बहुत अच्छा है? अनिच्च! यह भी सदा रहने वाला नहीं है! इस प्रकार के प्रशिक्षण को मन में बैठा लेना अवरणीय वर्तमान को स्वीकारना है।

वर्तमान क्षण के प्रति जागरूक रहना इस ध्यान का एक प्रमुख उद्देश्य है। शारीरिक संवेदना ही वास्तव में इस क्षण की विद्यमानता है। अतीत की तो केवल याददाश्त रहती है और भविष्य काल्पनिक है। मात्र वर्तमान ही सत्य है। हमारे उच्छृंखल विचार तथा कल्पनाएं अतीत से अनागत की ओर अथवा भविष्य से भूत की ओर अबाध गति से भ्रमणशील हैं। किन्तु ईश्वर न तो अतीत में है, न भविष्य में। वह तो इस क्षण में, वर्तमान में विद्यमान है। ऐसा नहीं कि हम भूत को याद न रखें अथवा भविष्य की योजनाएँ ही न बनाएँ। यह क्षमता तो मानव के लिए अमूल्य उपहार स्वरूप है। किंतु यह सब हम अपने स्वतंत्र चुनाव से कर पावें, अपने विकल्प विचारों के हाथों में पड़े निरीह शिकार की भांति नहीं।

प्रस्थान की प्रातःबेला में बताया गया कि हमारी विपश्यना की दीक्षा पूरी हुई। अब यह हम पर है कि चाहे तो पूर्ण मुक्ति की ओर अग्रसर हो सकते हैं। क्योंकि अब तक जो हमने किया है वह वास्तव में अत्यंत महत्वपूर्ण होते हुए भी, है छोटा सा पहला कदम ही। प्रगति चालू रखने के लिए न्यूनतम आवश्यकताएं हैं—

१) सुबह-शाम एक-एक घंटे का नियमित ध्यान।

२) रात्रि में नींद से पूर्व एवं प्रातः जागते ही ५ मिनट जागरूकता का अभ्यास एवं दिन भर में जहां, जब, जितना संभव हो।

३) वर्ष में कम से कम एक बार दस दिवसीय विपश्यना शिविर—चाहे शिविरों में भाग लेकर अथवा अपने घर पर स्वयं—शिविर लगाकर।

यह कार्यक्रम भारी लगता है किंतु मुझे विश्वास है कि इनमें से बहुतेरे युवा व्यक्ति इसी कार्यक्रम के अनुसार कार्यरत हैं तथा और भी उनके साथ हो लेंगे। वास्तव में कुछ तो इतने उत्सुक थे कि उन्होंने तुरंत ही रुक कर वहीं एक स्वयं-शिविर में सम्मिलित होने की प्रार्थना की। कुछ साधक वर्ष में कम से दो-तीन शिविरों में भाग लेंगे, ऐसा लगा। एक युवक से मैं बाद में मिली तो उसने बताया कि वह अब तक ऐसे १२ शिविर कर चुका है। मुझे यहां व्यक्ति-पूजा के खतरे की आशंका हुई। यद्यपि गुरूजी स्वयं इसको प्रोत्साहित करते नहीं लगे। गुरूजी अत्यंत विवेकशक्ति-संपन्न तथा प्रत्युत्पन्न परिहासकला में दक्ष एक आकर्षक व्यक्ति हैं। साधकों से अत्यधिक परिश्रम कराते हुए भी मुझे वे सचमुच करुणशील और अत्यंत ज्ञानी लगे। जब एक लड़के ने उनसे यौन-संबंध के विषय में प्रश्न किया तो उन्होंने स्पष्टरूप से कहा कि शारीरिक संबंध एक पुरुष और एक नारी तक सीमित रखना चाहिए और वह भी दोनों के परिपक्व हो जाने पर दोनों की पारस्परिक सहमति द्वारा शीघ्र से शीघ्र बंद हो जाना चाहिए। बीच-बीच में विनोदी उपाख्यानों से श्रोताओं को हर्षित करते रहने पर भी उनके धर्म-प्रवचन गंभीर रुपसे सारगर्भित होते थे। ध्यान के समय वह कभी-कभी बौद्धों की पुरानी भाषा पालि की गाथाएं गाते थे। उस समय उनका स्वर कंठ के बजाय नाभि से उठता प्रतीत होता था। निस्संदेह हम उन शब्दों के अर्थ नहीं समझते थे, परंतु उनके कथनानुसार हम जैसे-जैसे पकते जायेंगे, उन प्रकम्पनों से अधिकाधिक लाभान्वित होते जायेंगे।

शिविरार्थियों में मेरे अतिरिक्त दो और ईसाई साध्वियां थीं और मुझे बादमें पता लगा कि कुछ पादरी भी थे। हम सभी वातावरण से मेल खाते परिधानों में थे क्योंकि किसी भी भांति का सांप्रदायिक पहनावा ऐसे माहौल में अनुपयुक्त होता। भारत का कैथोलिक समाज विपश्यना में बड़ी गहरी रुचि लेता दिखाई दे रहा है। विशेषरूप से जिसूइस्ट लोग बड़ी संख्या में पादरियों को विपश्यना-प्रशिक्षण हेतु शिविरों में भेजते रहते हैं।

सारे विश्व के जीवंत प्राणियों को शांति और करूणा प्राप्त हो! सुखी हों! सुखी हों!! सुखी हों!!!

श्री. ब्र. प्र. पालीवाल द्वारा अनुवादित एवं संक्षिप्तिकृत।

'न्यू फायर' के शिशिर १९७८ के अंक से साभार

इगतपुरी में शिविर (केवल पुराने साधकोंके लिए)

स्व. शि. क्र.	८५	दि. ६-८-८१	से	१७-८-८१	तक
,,	८६	,, १७-८-८१	से	२८-८-८१	तक
,,	८७	,, २८-८-८१	से	८-९-८१	तक
,,	८८	,, ८-९-८१	से	१९-९-८१	तक
लघु शिविर		दि. १-११-८१	से	८-११-८१	तक

संपर्क – व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३ (नासिक) फोन नं॰ – ७६

सूचना : कृपया ध्यान दें

१. पत्रिका संबंधी किसी भी पत्राचार अथवा मनीआर्डर भेजते समय अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें।

२. सभी पत्राचार : व्यवस्थापक, **पत्रिका विभाग,** विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३ (नासिक) के पते पर ही करें, बम्बईके पते पर कदापि नहीं।

३. पत्रिका सभी हिन्दी जाननेवाले साधकोंको नियमित रूपसे भेजी जाती है। अतः आपको या आपके किसी अन्य साथीको किसी कारणवश न मिलती हो तो उपरोक्त विवरण देते हुए निःसंकोच सूचित करें।

४. बार-बार पता बदलनेमें अनेक असुविधाएं हैं। अतः जहां तक संभव हो एक स्थायी पते पर ही पत्रिका मंगाएं। यदि थोड़े समयके लिए कहीं नए स्थान पर जांय तो अपने पूर्व पतेसे ही "रिडाय-रेक्ट" करवानेकी स्वतः व्यवस्था करा लें।

५. जिनके यहां "विपश्यना" की अतिरिक्त प्रतियां जाती हों अथवा जहां एक ही प्रति मंगाकर कई लोग पढ़ सकते हों तो अतिरिक्त प्रति बंद करनेके लिए उसकी ग्राहक-संख्या लिखते हुए बंद करनेका निर्देश अवश्य करें अन्यथा वह प्रति वापस लौटा दें। कोई प्रति बेकार नहीं जानी चाहिए।

६. वार्षिक शुल्क दाताओंसे निवेदन हैं कि समय पर अपना शुल्क भेजनेके लिए स्वयं सचेत रहें। क्योंकि यह प्रकाशन किसी व्यावसायिक लाभके लिए नहीं, बल्कि मात्र सेवाभावसे धर्म-सेवकों द्वारा किया जाता है। हिसाबी सुविधाके लिए इसका 'शुल्क-वर्ष' **जनवरी से दिसम्बर** तकका माना गया है।

फोन : ४३५७६, २५८३७

मेसर्स कावरा ब्रदर्स

सेन्ट्रल एवेन्यू रोड, नागपुर - ४४० ०१८

की मंगल कामनाओं सहित

↓

दूहा धरम रा

धरम न दूजो हू सकै धरम सनातन एक।
मतमतान्तरां सूं बण्या, मिथ्या धरम अनेक॥
पाळी संस्कृत हीबरु, अरबी बोलै कोय।
भासा हूवै भिन्न पर, भाव धरम रो होय॥
रंग गाय रो भिन्न है, दूध भिन्न ना होय।
सम्प्रदाय हूवै जुदा, धरम जुदा ना होय॥
जितनी जितनी बोधि है, उतनो उतनो बुद्ध।
जितनी जितनी सोधि है, उतनो सज्जन सुद्ध॥
सज्जन री संगत मिलै, मिलै धरम अनमोल।
मिनख जमारो सुधरज्या, सुफळ हुवै या खोळ॥
आ तो गंगा निरमळी, हूवै मुक्त नहाय।
धरम न कीं कै बाप को, जो धारै सो पाय॥

दोहे धर्म के

धन्य! धन्य! ईसामसीह! मैत्री करुणागार।
तेरे जीवन में भरा, शुद्ध प्यार ही प्यार॥
सम्प्रदाय से सन्त की, होवे ना पहचान।
जिसके मन मैत्री जगे, वह ही सन्त सुजान॥
त्रिपिटक हो या बाइबल, गीता होय कुरान।
बोधि वचन होवे जहां, बुद्ध वचन ही जान॥
शब्द शब्द अमृत झरे, बुद्ध वचन अनमोल।
आधि-व्याधि आहत जगत, दी संजीवन घोल॥
भाषा बोली भिन्न है, सार तत्व तो एक।
धर्म विश्व का एक ही, दर्शन हुए अनेक॥
शुद्ध धर्म करता नहीं, सम्प्रदाय के भेद।
सब को ही निर्मल करे, होवे स्याह सफेद॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : **रामप्रताप यादव,** ग्रीन हाऊस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, बंबई-२३. टेलीफोन : ३१३५१०. ● मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक-४२२००७. टेलिफोन : ८८२५१.

पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रु. ५००/-, चौथाई पृष्ठ रु. २५०/- ● वार्षिक शुल्क रु. ५/-, आजीवन शुल्क रु. ५१/-

विपश्यना"

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

पो. रजि. नं (M) NS (C) 36

प्रेषक :

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)